दसवाँ अंक अप्रैल–जून 2017 ISSN-2395-2873

तीसरा वर्ष

सहचर...

(साहित्य,सिनेमा,कला एवं अनुवाद की ई-पत्रिका)

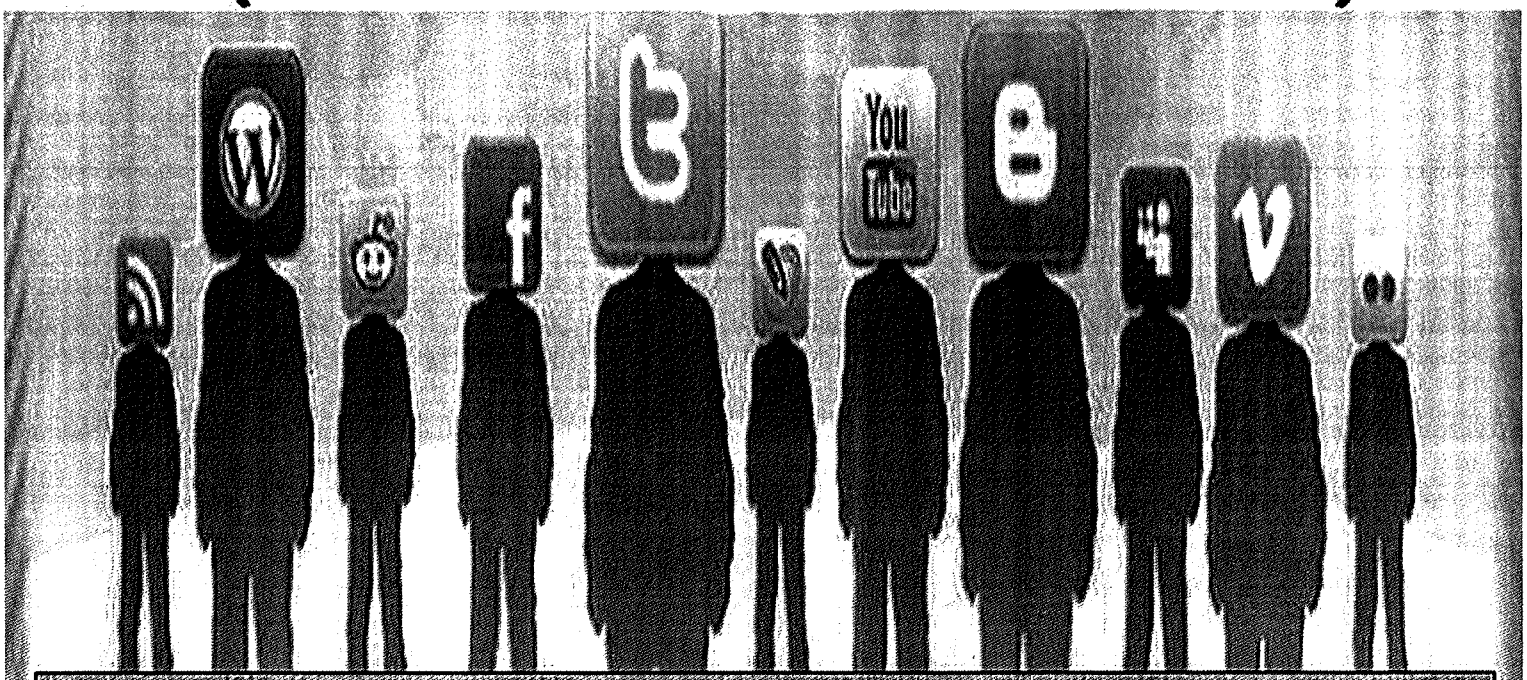

न्यू–मीडिया विशेषांक

संपादक

डॉ. आलोक रंजन पांडेय

SAHCHAR.COM

Posted on July 19, 2017 by admin

संपादकीय

डॉ. आलोक रंजन पांडेय

बातों-बातों में

डी.डी. के प्रसिद्ध कार्यक्रम 'दो टूक' में अपने सवालों से पस्त करनेवाले प्रसिद्ध पत्रकार और वरीय एंकर अशोक श्रीवास्तव से सहचर टीम की दो टूक बातचीत ।
लंदन में रहनेवाले भारतीय प्रवासी और प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता, एंग्लो एशियन ट्रस्ट के के प्रबंधक बाबा देवेंद्र घई से सहचर टीम आत्मीय बातचीत।
मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापक, प्रसिद्ध साहित्यकार व आलोचक डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय से डॉ. प्रमोद पाण्डेय की बातचीत

शोधार्थी

वैश्वीकरण, बाजारवाद और हिंदी भाषा – डॉ. साधना शर्मा

फिल्मी आइने में 'दिव्यांग' – अर्चना उपाध्याय

सूरदास के काव्य में लोकतत्व – अनुराग सिंह

राजभाषा हिंदी का स्वरूप – डॉ. ममता सिंगला
मीडिया के कायाकल्प का वाहक है न्यू मीडिया – डॉ. सुनील कुमार तिवारी
सोशल मीडिया : दशा और दिशा - प्रवीण कुमार झा

नागार्जुन की कविता: असंभव की संभावना – श्वेतांशु शेखर झा

संघ के सत्कार्य और मीडिया का पूर्वाग्रही मूल्यांकन – पीयूष द्विवेदी
न्यू मीडिया का दुरुपयोग : सोशल मीडिया के संदर्भ में – वीरेन्दर
21वीं सदी में तकनीक और मीडिया का बदलता स्वरूप – अतुल वैभव
युवाओं के कंधों पर सवार न्यू मीडिया – डॉ. अनु चौहान
सोशल मीडिया और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता- कु. किरण त्रिपाठी
अभिव्यक्ति के नए आयाम – डॉ. चित्रा सचदेवा
भारत में समकालीन मीडिया और मौद्रिक व्यवस्था: विमुद्रीकरण के संदर्भ में – राकेश कुमार दुबे
न्यू मीडिया की विश्वसनीयता – दीपक झा
रीतिकालीन साहित्य और न्यू मीडिया : डॉ. सरिता
मानव अधिकारों की रक्षा में मीडिया की भूमिका – डॉ. कमलिनी पाणिग्राही

बिहार के प्रमुख ऐतिहासिक स्थल और मीडिया – डॉ. सुशील कुमार
मीडिया में भारतीय जीवन मूल्यों का स्वरूप – डॉ. आशा रानी
संवाद का माध्यम और न्यू मीडिया – रोहित कुमार
राष्ट्रवादी पत्रकारिता का दौर – राजीव प्रताप सिंह
तर्क की प्रसुप्ति का दौर और नया मीडिया – गोपाल सुलेखा कैलाश झा
सोशल मीडिया में उपभोक्तावादी संस्कृति और विज्ञापन – डॉ. हरदीप कौर

अनुभूति

और मुन्ना ने सुनी कहानी (कविता) – सुषमा सिंह
मेरी पहचान (कविता) -अमर
आलोक मिश्रा की दो कविताएँ
देश का भगवान ? (कविता) – संदीप शर्मा
पढ़ता रहूँगा तेरा चेहरा (कहानी)-गोपाल निर्दोष
प्रेमचंद की कहानी ईदगाह का नाट्य रूपांतरण : तेजस पुनिया

जरा हट के

नारी शक्ति – डॉ॰ मधु कौशिक
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में रवींद्रनाथ ठाकुर के विश्व-मानवतावाद के प्रभाव का अध्ययन- अमन कुमार
समकालीन हिंदी कविता में पारिवार – डॉ. दयाराम
धर्म और कम्यूनिज्म – मोहसिना खातून
नारी-चेतना के विविध आयाम – ज्योति
डायन बताने के पीछे षड्यंत्र : संतोष शर्मा
सुभद्राकुमारी चौहान के काव्य में राष्ट्रीय चेतना – निधि मिश्रा
मध्यवर्ग की बौद्धिकता और विपात्रा – चंद्रमणि सिंह

तर्जुमा

हिंदी अनुवाद के इतिहास लेखन में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का योगदान – वीरेंद्र कुमार मीना

समीक्षा

दिल्ली दरबार (उपन्यास) लेखक : सत्य व्यास - नितिन चौरसिया

सिनेमा/फैशन

हिंदी कथा साहित्य और टेलीफिल्म : डॉ. विपुल कुमार
एनिमेशन फिल्मों का जादुई संसार – डॉ. अंकित कुमार श्रीवास्तव

Posted in Uncategorized, अनुक्रमणिका, दसवाँ अंक

फिल्मी आइने में 'दिव्यांग' – अर्चना उपाध्याय

Posted on July 19, 2017 by admin

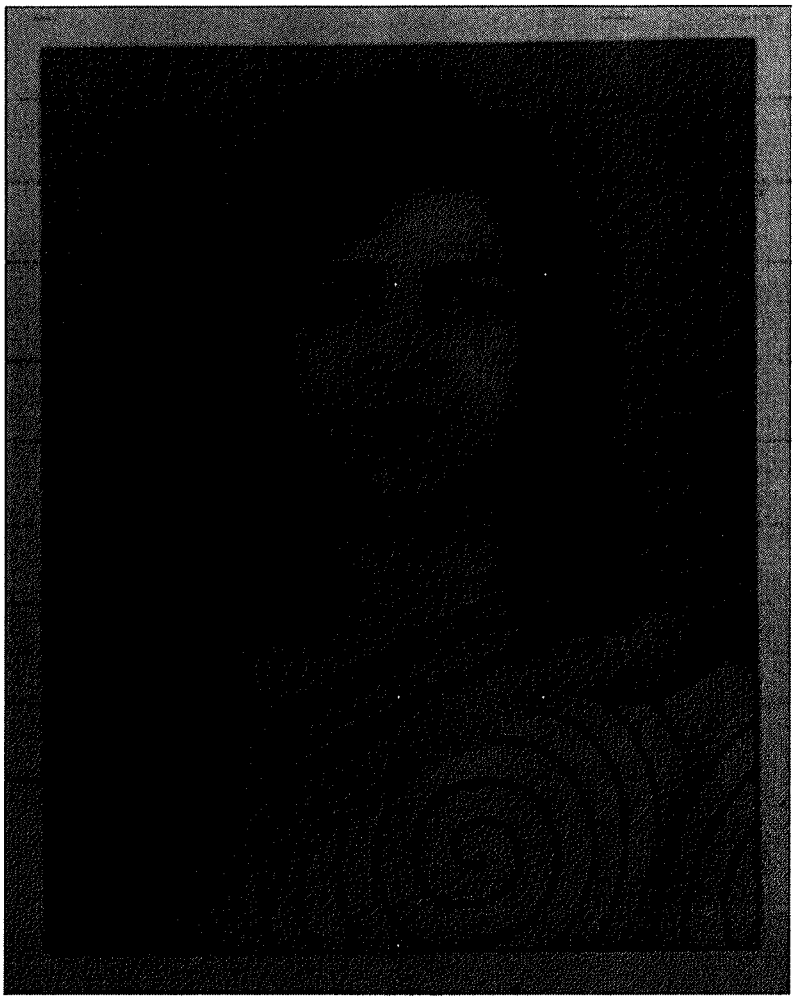

समाज में जो कुछ भी घटित होता है फिल्में उन सभी घटनाओं को दिखाने का एक सशक्त माध्यम हैं। वास्तविक जीवन तथा फिल्मी परदे पर दिखाए जा रहे बनावटी जीवन के अंतर्द्वंद्व के बीच फँसे होने के बावजूद भी यह लोगों को मनोरंजन, शिक्षा, सूचना तथा उनके सोच और व्यवहार में परिवर्तन लाने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। दिव्यांगता सम्पूर्ण विश्व की कुछ प्रमुख समस्याओं में से एक है। भारतवर्ष में दिव्यांगता के विषय में जो पारंपरिक धरणाएँ हैं, वे

अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण हैं। आज भी शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों ही वर्गों में दिव्यांगता के प्रति अनेक भ्रांतियाँ हैं। हिन्दी फिल्में न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी अपनी पहुँच बनाए हुए हैं। इन फिल्मों के द्वारा दिव्यांगता के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदला जा सकता है। किन्तु, अधिकतर हिन्दी फिल्मों ने दिव्यांगता जैसे गंभीर मुद्दे को अनमने, असम्वेदनशील तथा विकृत तरीके से प्रस्तुत किया है। हमारे फिल्मकार इस मुद्दे के प्रति उस तरह ईमानदार नहीं है, जिस तरह कि उन्हें होना चाहिए। सन् 2000 के पूर्व इक्के-दुक्के फिल्मों में ही इस समस्या की गंभीरता को समझने-समझाने का प्रयास किया गया। अधिकतर फिल्मों का नजरिया घिसा-पिटा रूढ़िग्रस्त ही रहा। इन फिल्मों में दिव्यांगों को बोझ के रूप में, दया के पात्रा के रूप में, हास्य-व्यंग्य के लिए या सुरक्षा तथा सहारे के लिए दूसरों पर निर्भर होना दिखाया गया है। सन् 2000 के बाद फिल्म जगत में दिव्यांगता को लेकर एक नई लहर देखने को मिलती है, जब इसे अधिक सम्वेदनशीलता तथा सावधनी के साथ फिल्मी परदे पर उतारा गया। निर्माता-निर्देशकों ने दिव्यांगता को दिव्यांगों के ही दृष्टिकोण से देखने-समझने की कोशिश की।

दिव्यांगों की समस्या पर आधरित पहला अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह चेन्नई की एक स्वयं-सेवी संस्था 'एबिलिटी पफाउण्डेशन' द्वारा सन् 2005 में आयोजित किया गया। यह समारोह अपने आप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था क्योंकि, पहली बार पूरी दुनिया से आई फिल्मों ने न केवल लोगों को दिव्यांगता जैसी गंभीर समस्या के प्रति जागरूक किया बल्कि दित्यांगता के प्रति समाज की रूढ़िग्रस्त सोच को बदलने में सहायता की।

पिछले ही वर्ष, 2015 में प्रदर्शित 'सोनाली बोस' द्वारा निर्देशित 'मार्गरीटा-विद-ए-स्ट्रा' दिव्यांग समस्या पर आधरित एक बहुचर्चित पिफल्म है, जिसने दिव्यांगों के प्रति दर्शकों के दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास किया है। इस पिफल्म में लैला की मुख्य भूमिका 'काल्कि' द्वारा निभाया गया है। विद्रोहिणी स्वभाव की युवती 'सेरेब्रल पाल्सी' नामक मानसिक बीमारी की शिकार है। फिल्म दिव्यांग लैला की काम-भावना और उससे जुड़े विभिन्न प्रश्नों को सामने रखती है। निर्देशक ने लैला की मानसिक स्थिति को परदे पर बखूबी उतारा है।

पिफल्म 'पा', 2009 में प्रदर्शित दिव्यांग समस्या पर आधरित एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसमें 'अमिताभ बच्चन' ने अत्यन्त सशक्त भूमिका निभाई है, जिसमें वे एक विशेष तरह की बीमारी 'प्रोजीरिया' से ग्रस्त दिखाए गए हैं। इस बीमारी में व्यक्ति का मस्तिष्क तो उसकी उम्र के अनुसार ही होता है किन्तु, शारीरिक स्थिति अपनी उम्र से चार-पाँच गुना अध्कि की हो जाती है। अर्थात्, इस बीमारी से प्रभावित बारह वर्ष का बच्चा भी दिमाग से तो बच्चा ही होता है पर उसका शरीर साठ-सत्तर वर्ष के वृद्ध की भाँति हो जाता है।

'यू, मी और हम', 2008 में प्रदर्शित एक सशक्त फिल्म है। इस फिल्म में 'अजय देवगन' ने केन्द्रिय भूमिका निभाई है। फिल्म में 'एल्ज़ीमर्स' नामक मानसिक बीमारी के विषय में बताया गया है। यह लगभग एक लाइलाज बीमारी है। इस बीमारी का अभी तक कोई कारगर इलाज संभव नहीं हो पाया है। इसमें मनुष्य की याददाश्त, सोचने-समझने की शक्ति, यहाँ तक कि छोटे-छोटे कार्यों को करने की क्षमता भी प्रभावित हो जाती है।

'आमिर खान' द्वारा निर्देशित 'तारे जमीं पर', 2007 में प्रदर्शित एक अति सम्वेदनशील फिल्म है। 'दर्शिल सफारी' ने इसमें केन्द्रिय भूमिका निभाई है। फिल्ममें एक दस वर्षीय बालक 'डिस्लेक्सिया' नामक मानसिक अक्षमता से ग्रस्त है। फिल्म यह संदेश देती है कि अभिभावकों को अपने बच्चों की क्षमता-अक्षमता को समझते हुए उसकी प्रतिभा को सही दिशा देनी चाहिए, जिससे अपनी कमियों के कारण बच्चे किसी कुंठा से ग्रसित न हों। यह फिल्म पूरी दुनिया में देखी और सराही गई।

'संजय लीला भंसाली' द्वारा निर्देशित 'ब्लैक', 2005 में प्रदर्शित एक अभूतपूर्व

पिफल्म है। 'रानी मुखर्जी' इस फिल्म की केन्द्रिय भूमिका में हैं। यह फिल्म एक दृष्टिहीन तथा मूक लड़की की कहानी को अत्यन्त सम्वेदनशील तरीके से उकेरती है। वह (नायिका) अपने शिक्षक देवराज सहाय (अमिताभ बच्चन) की सहायता से अपने जीवन में आने वाली सभी चुनौतियों का मुकाबला करते हुए अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ती है। देवराज सहाय उस लड़की को उसकी मंजिल तक पहुँचने में सहायता करता है। इस प्रक्रिया में वह स्वयं मानसिक बीमारी से ग्रस्त हो जाता है।

'नागेश कक्कूनूर' द्वारा निर्देशित 'इकबाल' भी इसी वर्ष अर्थात्, सन् 2005 में प्रदर्शित एक उल्लेखनीय फिल्म है। 'श्रेयस तालपाड़े' ने फिल्म में एक मूक-बधिर की भूमिका को बखूबी अंजाम दिया है। फिल्म में एक मूक-बधिर लड़का जिसे क्रिकेट का शौक है, इस खेल को सीखने के लिए भूतपूर्व क्रिकेट खिलाड़ी (नसीरूद्दीन शाह) की सहायता लेता है।फिल्म दिखाती है कि किस प्रकार एक दिव्यांग युवक अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति के बल पर अपने रास्ते में आने वाली सभी बाधाओं को पार कर भारतीय क्रिकेट टीम में शामिल हो जाता है।

'संजय लीला भंसाली' के निर्देशन में बनी 'खामोशी', 1996 में प्रदर्शित एक उत्कृष्ट फिल्म है। इसमें नाना पाटेकर तथा सीमा विश्वास ने केन्द्रिय भूमिकाओं का निर्वाह किया है। ये मूक-बधिर दम्पत्ति अपनी निजि तथा आर्थिक जरूरतों के लिए अपनी बेटी (मनीषा कोइराला) पर इस तरह निर्भर हैं कि उसके (बेटी) प्रेम तथा विवाह का भी विरोध करते हैं। यह फिल्म दिव्यांगों के मनोविज्ञान को समझने की मांग करती है।

'बालू महेन्द्रा' द्वारा निर्देशित, 1983 में प्रदर्शित 'सदमा' एक चर्चित फिल्म है। श्रीदेवी तथा कमल हसन इस फिल्म की केन्द्रिय भूमिकाओं में हैं। फिल्म की कहानी इस प्रकार है – एक कार दुर्घटना में सिर में चोट लग जाने की वजह से नेहालता (श्रीदेवी) की मानसिक स्थिति एक छोटी बालिका जैसी हो जाती है। वह एक कोठे में फँस जाती है। जहाँ से सोनू (कमल हसन) जो एक स्कूल का शिक्षक है उसके प्रेम में बँध जाता है और उसे कोठे से बाहर निकालता है। इस फिल्म में श्रीदेवी के बेहतरीन अभिनय की सर्वत्रा प्रशंसा हुई।

'सईं परांजये' द्वारा निर्देशित, 1980 में प्रदर्शित फिल्म 'स्पर्श' मील का पत्थर साबित हुई। फिल्म की केन्द्रिय भूमिका में नसीरूद्दीन शाह तथा शबाना आज़मी हैं। फिल्म अनिरूद्ध (नसीरूद्दीन शाह) जो कि एक अंध-विद्यालय का प्राधानाचार्य है, उसके जीवन और अनुभव को दिखाती है। विद्यालय के अन्य दृष्टिहीन विद्यार्थियों के जीवन-संघर्ष को भी इसमें दिखाया गया है। फिल्म में नायक अनिरूद्ध दृष्टिहीन होने के बावजूद स्वावलंबी जीवन जीता है। वह अपने रोजमर्रा के कार्य स्वयं करता है, साथ ही विद्यालय का प्रबंधन-कार्य भी पूरी कुशलता से निभाता है। फिल्म यह संदेश देती है कि दिव्यांगों को अनावश्यक दया तथा सहायता की जरूरत नहीं होती बल्कि, उन्हें भी आम व्यक्तियों की तरह सच्चे प्रेम तथा आत्मीय संबंधों की दरकार होती है। दिव्यांग व्यक्ति को जब उसकी असमर्थता का अहसास कराया जाता है उस समय उसके द्वारा महसूस किए जाने वाले संत्रास तथा पीड़ा को फिल्म के परदे पर बड़ी बारीकी से उतारा गया है। इसी के साथ फिल्म उन कड़वी सच्चाइयों को भी सामने लाती है, जिनका सामना दृष्टिहीनों को निरन्तर करना पड़ रहा है। ब्रेल-लिपि में पाठ्य-पुस्तकों की अनुपलब्ध्ता तथा रोजगारपरक शिक्षा का अभाव, दृष्टिहीनों के मार्ग की प्रमुख कठिनाईयाँ हैं। इस फिल्म को वर्ष की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी फीचर फिल्म होने का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

'गुलज़ार' की फिल्म 'कोशिश', 1972 में प्रदर्शित एक अन्य यादगार फिल्म है। इसकी मुख्य भूमिका में जया भादुड़ी और संजीव कुमार हैं। फिल्म एक गूँगे और बहरे दंपत्ति के जीवन पर आधरित है। कहानी में नायक तथा नायिका के मिलन, प्रेम, विवाह तथा एक संतान की प्राप्ति को दिखाते हैं। यह दंपत्ति अपने

पुत्र को पढ़ा-लिखा कर समाज में खड़ा करता है। फिल्म अपने चरम की ओर तब बढ़ती है जब एक दिन संजीव कुमार का 'बॉस' उसे अपने घर पर बुलाता है और अपनी बेटी के लिए जो कि मूक-बधिर है, संजीव कुमार के बेटे का हाथ माँगता है। संजीव कुमार (हरि) इस रिश्ते के लिए तैयार है परन्तु, उसका बेटा इस रिश्ते से इन्कार कर देता है। समाज दिvyaann जो कुछ भी घटित होता है फिल्में उन सभी घटनाओं को दिखाने का एक सशक्त माध्यम हैं। वास्तविक जीवन तथा फिल्मी परदे पर दिखाए जा रहे बनावटी जीवन के अंतर्द्वंद्व के बीच फँसे होने के बावजूद भी यह लोगों को मनोरंजन, शिक्षा, सूचना तथा उनके सोच और व्यवहार में परिवर्तन लाने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। दिव्यांगता सम्पूर्ण विश्व की कुछ प्रमुख समस्याओं में से एक है। भारतवर्ष में दिव्यांगता के विषय में जो पारंपरिक धरणाएँ हैं, वे अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण हैं। आज भी शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों ही वर्गों में दिव्यांगता के प्रति अनेक भ्रांतियाँ हैं। हिन्दी फिल्में न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी अपनी पहुँच बनाए हुए हैं। इन फिल्मों के द्वारा दिव्यांगता के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदला जा सकता है। किन्तु, अधिकतर हिन्दी फिल्मों ने दिव्यांगता जैसे गंभीर मुद्दे को अनमने, असम्वेदनशील तथा विकृत तरीके से प्रस्तुत किया है। हमारे फिल्मकार इस मुद्दे के प्रति उस तरह ईमानदार नहीं है, जिस तरह कि उन्हें होना चाहिए। सन् 2000 के पूर्व इक्के-दुक्के फिल्मों में ही इस समस्या की गंभीरता को समझने-समझाने का प्रयास किया गया। अधिकतर फिल्मों का नजरिया घिसा-पिटा रूढ़िग्रस्त ही रहा। इन फिल्मों में दिव्यांगों को बोझ के रूप में, दया के पात्रा के रूप में, हास्य-व्यंग्य के लिए या सुरक्षा तथा सहारे के लिए दूसरों पर निर्भर होना दिखाया गया है। सन् 2000 के बाद फिल्म जगत में दिव्यांगता को लेकर एक नई लहर देखने को मिलती है, जब इसे अधिक सम्वेदनशीलता तथा सावधनी के साथ फिल्मी परदे पर उतारा गया। निर्माता-निर्देशकों ने दिव्यांगता को दिव्यांगों के ही दृष्टिकोण से देखने-समझने की कोशिश की।

दिव्यांगों की समस्या पर आधरित पहला अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह चेन्नई की एक स्वयं-सेवी संस्था 'एबिलिटी पफाउण्डेशन' द्वारा सन् 2005 में आयोजित किया गया। यह समारोह अपने आप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था क्योंकि, पहली बार पूरी दुनिया से आई फिल्मों ने न केवल लोगों को दिव्यांगता जैसी गंभीर समस्या के प्रति जागरूक किया बल्कि दित्यांगता के प्रति समाज की रूढ़िग्रस्त सोच को बदलने में सहायता की।

पिछले ही वर्ष, 2015 में प्रदर्शित 'सोनाली बोस' द्वारा निर्देशित 'मार्गरीटा-विद-ए-स्ट्रा' दिव्यांग समस्या पर आधरित एक बहुचर्चित पिफल्म है, जिसने दिव्यांगों के प्रति दर्शकों के दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास किया है। इस पिफल्म में लैला की मुख्य भूमिका 'काल्कि' द्वारा निभाया गया है। विद्रोहिणी स्वभाव की युवती 'सेरेब्रल पाल्सी' नामक मानसिक बीमारी की शिकार है। फिल्म दिव्यांग लैला की काम-भावना और उससे जुड़े विभिन्न प्रश्नों को सामने रखती है। निर्देशक ने लैला की मानसिक स्थिति को परदे पर बखूबी उतारा है।

पिफल्म 'पा', 2009 में प्रदर्शित दिव्यांग समस्या पर आधरित एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसमें 'अमिताभ बच्चन' ने अत्यन्त सशक्त भूमिका निभाई है, जिसमें वे एक विशेष तरह की बीमारी 'प्रोजीरिया' से ग्रस्त दिखाए गए हैं। इस बीमारी में व्यक्ति का मस्तिष्क तो उसकी उम्र के अनुसार ही होता है किन्तु, शारीरिक स्थिति अपनी उम्र से चार-पाँच गुना अध्कि की हो जाती है। अर्थात्, इस बीमारी से प्रभावित बारह वर्ष का बच्चा भी दिमाग से तो बच्चा ही होता है पर उसका शरीर साठ-सत्तर वर्ष के वृद्ध की भाँति हो जाता है।

'यू, मी और हम', 2008 में प्रदर्शित एक सशक्त फिल्म है। इस फिल्म में 'अजय देवगन' ने केन्द्रिय भूमिका निभाई है। फिल्म में 'एल्ज़ीमर्स' नामक मानसिक बीमारी के विषय में बताया गया है। यह लगभग एक लाइलाज बीमारी है। इस बीमारी का अभी तक कोई कारगर इलाज संभव नहीं हो पाया है। इसमें मनुष्य की याददाश्त, सोचने-समझने की शक्ति, यहाँ तक कि छोटे-छोटे कार्यों को करने की क्षमता भी प्रभावित हो जाती है।

'आमिर खान' द्वारा निर्देशित 'तारे जमीं पर', 2007 में प्रदर्शित एक अति सम्वेदनशील फिल्म है। 'दर्शिल सफारी' ने इसमें केन्द्रिय भूमिका निभाई है। फिल्ममें एक दस वर्षीय बालक 'डिस्लेक्सिया' नामक मानसिक अक्षमता से ग्रस्त है। फिल्म यह संदेश देती है कि अभिभावकों को अपने बच्चों की क्षमता-अक्षमता को समझते हुए उसकी प्रतिभा को सही दिशा देनी चाहिए, जिससे अपनी कमियों के कारण बच्चे किसी कुंठा से ग्रसित न हों। यह फिल्म पूरी दुनिया में देखी और सराही गई।

'संजय लीला भंसाली' द्वारा निर्देशित 'ब्लैक', 2005 में प्रदर्शित एक अभूतपूर्व पिफल्म है। 'रानी मुखर्जी' इस फिल्म की केन्द्रिय भूमिका में हैं। यह फिल्म एक दृष्टिहीन तथा मूक लड़की की कहानी को अत्यन्त सम्वेदनशील तरीके से उकेरती है। वह (नायिका) अपने शिक्षक देवराज सहाय (अमिताभ बच्चन) की सहायता से अपने जीवन में आने वाली सभी चुनौतियों का मुकाबला करते हुए अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ती है। देवराज सहाय उस लड़की को उसकी मंजिल तक पहुँचने में सहायता करता है। इस प्रक्रिया में वह स्वयं मानसिक बीमारी से ग्रस्त हो जाता है।

'नागेश कक्कूनूर' द्वारा निर्देशित 'इकबाल' भी इसी वर्ष अर्थात्, सन् 2005 में प्रदर्शित एक उल्लेखनीय फिल्म है। 'श्रेयस तालपाड़े' ने फिल्म में एक मूक-बधिर की भूमिका को बखूबी अंजाम दिया है। फिल्म में एक मूक-बधिर लड़का जिसे क्रिकेट का शौक है, इस खेल को सीखने के लिए भूतपूर्व क्रिकेट खिलाड़ी (नसीरूद्दीन शाह) की सहायता लेता है।फिल्म दिखाती है कि किस प्रकार एक दिव्यांग युवक अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति के बल पर अपने रास्ते में आने वाली सभी बाधाओं को पार कर भारतीय क्रिकेट टीम में शामिल हो जाता है।

'संजय लीला भंसाली' के निर्देशन में बनी 'खामोशी', 1996 में प्रदर्शित एक उत्कृष्ट फिल्म है। इसमें नाना पाटेकर तथा सीमा विश्वास ने केन्द्रिय भूमिकाओं का निर्वाह किया है। ये मूक-बधिर दम्पत्ति अपनी निजि तथा आर्थिक जरूरतों के लिए अपनी बेटी (मनीषा कोइराला) पर इस तरह निर्भर हैं कि उसके (बेटी) प्रेम तथा विवाह का भी विरोध करते हैं। यह फिल्म दिव्यांगों के मनोविज्ञान को समझने की मांग करती है।

'बालू महेन्द्रा' द्वारा निर्देशित, 1983 में प्रदर्शित 'सदमा' एक चर्चित फिल्म है। श्रीदेवी तथा कमल हसन इस फिल्म की केन्द्रिय भूमिकाओं में हैं। फिल्म की कहानी इस प्रकार है – एक कार दुर्घटना में सिर में चोट लग जाने की वजह से नेहालता (श्रीदेवी) की मानसिक स्थिति एक छोटी बालिका जैसी हो जाती है। वह एक कोठे में फँस जाती है। जहाँ से सोनू (कमल हसन) जो एक स्कूल का शिक्षक है उसके प्रेम में बँध जाता है और उसे कोठे से बाहर निकालता है। इस फिल्म में श्रीदेवी के बेहतरीन अभिनय की सर्वत्रा प्रशंसा हुई।

'सईं परांजये' द्वारा निर्देशित, 1980 में प्रदर्शित फिल्म 'स्पर्श' मील का पत्थर साबित हुई। फिल्म की केन्द्रिय भूमिका में नसीरूद्दीन शाह तथा शबाना आज़मी हैं। फिल्म अनिरूद्ध (नसीरूद्दीन शाह) जो कि एक अंध-विद्यालय का

प्राधानाचार्य है, उसके जीवन और अनुभव को दिखाती है। विद्यालय के अन्य दृष्टिहीन विद्यार्थियों के जीवन-संघर्ष को भी इसमें दिखाया गया है। फिल्म में नायक अनिरूद्ध दृष्टिहीन होने के बावजूद स्वावलंबी जीवन जीता है। वह अपने रोजमर्रा के कार्य स्वयं करता है, साथ ही विद्यालय का प्रबंधन-कार्य भी पूरी कुशलता से निभाता है। फिल्म यह संदेश देती है कि दिव्यांगों को अनावश्यक दया तथा सहायता की जरूरत नहीं होती बल्कि, उन्हें भी आम व्यक्तियों की तरह सच्चे प्रेम तथा आत्मीय संबंधों की दरकार होती है। दिव्यांग व्यक्ति को जब उसकी असमर्थता का अहसास कराया जाता है उस समय उसके द्वारा महसूस किए जाने वाले संत्रास तथा पीड़ा को फिल्म के परदे पर बड़ी बारीकी से उतारा गया है। इसी के साथ फिल्म उन कड़वी सच्चाइयों को भी सामने लाती है, जिनका सामना दृष्टिहीनों को निरन्तर करना पड़ रहा है। ब्रेल-लिपि में पाठ्य-पुस्तकों की अनुपलब्धता तथा रोजगारपरक शिक्षा का अभाव, दृष्टिहीनों के मार्ग की प्रमुख कठिनाईयाँ हैं। इस फिल्म को वर्ष की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी फीचर फिल्म होने का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

'गुलज़ार' की फिल्म 'कोशिश', 1972 में प्रदर्शित एक अन्य यादगार फिल्म है। इसकी मुख्य भूमिका में जया भादुड़ी और संजीव कुमार हैं। फिल्म एक गूँगे और बहरे दंपत्ति के जीवन पर आधरित है। कहानी में नायक तथा नायिका के मिलन, प्रेम, विवाह तथा एक संतान की प्राप्ति को दिखाते हैं। यह दंपत्ति अपने पुत्र को पढ़ा-लिखा कर समाज में खड़ा करता है। फिल्म अपने चरम की ओर तब बढ़ती है जब एक दिन संजीव कुमार का 'बॉस' उसे अपने घर पर बुलाता है और अपनी बेटी के लिए जो कि मूक-बधिर है, संजीव कुमार के बेटे का हाथ माँगता है। संजीव कुमार (हरि) इस रिश्ते के लिए तैयार है परन्तु, उसका बेटा इस रिश्ते से इन्कार कर देता है। समाज दिव्यांगों के जीवन के संघर्ष तथा दर्द के प्रति किस हद तक असम्वेदनशील है, इस बात को पिफल्म में सफलता के साथ चित्रांकित किया गया है। फिल्म मूक-बधिरों की सांकेतिक भाषा को भी प्रकाश में लाती है।

हाल के वर्षों में दिव्यांगता को केन्द्र में रखकर अनेक श्रेष्ठ फिल्मों का निर्माण किया गया है। हमारे फिल्मकार इस विषय के मर्म को समझते हुए पूरी सम्वेदना के साथ पिफल्म बना रहे हैं। हिन्दी फिल्म संसार दिव्यांगता के विषय में लोकधारणा को बदलने तथा सामाजिक जागरूकता लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इन फिल्मों के माध्यम से दिव्यांगों ने समाज में अपनी सशक्त उपस्थिति को दर्ज कराया है, जो स्वतन्त्रा, स्वावलंबी तथा सामान्य रूप से सक्षम व्यक्ति के रूप में अपना जीवन अपनी शर्तों पर जीते हैं। सच है कि फिल्में 'विकलांगता' की यात्राको 'दिव्यांगता' तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं ....., निभा रही हैं। पिफर भी, अभी इस विषय को और अधिक गहनता तथा गंभीरता से देखने-समझने की आवश्यकता है।

अर्चना उपाध्याय
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
श्याम लाल महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Posted in दसवाँ अंक, शोधार्थी